मन के मते न चलिये, मन के मते अनेक

ज्योति*

एक प्रसिद्ध जेन (झेन) कहानी के मुताबिक एक बार दो बौद्ध भिक्षु कहीं जा रहे थे। तभी नदी के एक किनारे उन्हें एक सुंदर लड़की की आवाज आई। जब वे उसके पास गए तब उस लड़की ने दोनों से कहा, ''मुझे नदी के उस पार जाना है। लेकिन मुझे नदी के पानी को उमड़ते हुए देखकर बहुत डर लग रहा है। क्या आप दोनों इसे पार करवा देंगे?'' एक भिक्षु ने तो साफ इंकार कर दिया यह कहकर कि वह नदी पार नहीं करवा सकता क्योंकि औरतों को छूने की मनाही है। लेकिन दूसरे ने उस लड़की को अपने सहारे किसी तरह नदी पार करवा दी। वह लड़की भिक्षु को धन्यवाद कहकर चली गई।

जब शाम हुई तो जिस भिक्षु ने लड़की को मना किया था, उसने दूसरे वाले से बेचैनी से कहा, ''यह आपने क्या कर दिया? मैं पूरा दिन यही सोचकर परेशान रहा कि आपने तो नियम ही भंग कर दिया। आप ऐसे कैसे कर सकते हैं?'' तब दूसरे वाले भिक्षु ने कहा, ''मैं तो उस लड़की को नदी पार करवाकर वहीं और उसी पल छोड़ आया पर आप हैं कि उसे पूरा दिन दिमाग में ढोते रहे।'' वास्तव में बौद्ध मत का मूल तत्व यही है, हमारा मन। अगर हम इसे किसी तरह समझा लें कि सहज मौन में समा जाओ तो फिर बाकी पूंछ की तरह जीवन से लगी झंझटें ही खत्म हो जाएंगी।

आधुनिक समय में अकेलापन सभी को काट खाने के लिए तैयार है जबकि हमारे पास अत्यधिक तकनीकी के साधन हैं। मनोरंजन का हर वो माध्यम आसानी से मिल रहा है जिसमें व्यक्ति अकेलेपन को महसूस कर ही न सके। महज कुछ रुपयों में कुछ ऑनलाइन मंचों के सब्सक्रिप्शन उपलब्ध हैं जिससे वह अंतहीन सिनेमा का लुत्फ उठा सकता है। व्यक्ति का रूप ग्राहक का है और यही वजह है कि सोशल साइट्स और इन ऑनलाइन मंचों ने व्यक्ति को अत्यधिक व्यस्त जीव में तब्दील कर दिया है। किसी को भी यह फिक्र नहीं होती कि सुबह की पहली आवाज आज के समय में क्या है और रात की अंतिम आवाजें क्या होती हैं। मौसम के अचानक बदल जाने में क्या नया जुड़ रहा है और बारिश की बूंदों के गिरने पर मिट्टी की खुशबू को कंक्रीट क्यों खा रही है। आधुनिक समय में व्यक्ति कहीं भी अपने ठहरने के अन्तराल को लंबा नहीं कर पा रहा है। वह हर चीज से होकर गुजर जा रहा है। लॉग इन और लॉग आउट के बीच व्यक्ति ने जीना सीख लिया है।

क्योंकि व्यक्ति बहुत से लोगों और संरचनाओं के बीच है और यही कारण है कि वह अकेला है। उसे 'एकांत' तक का सफर करना है जहाँ वह खुद के संग समय व्यतीत कर सकता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अकेलापन और एकांत की चाह दो अलग-अलग धुरियाँ हैं। अकेलेपन की चाह नहीं होती बल्कि लोगों के बीच बने रहने की इच्छा होती है। हम स्व विचारों से दूर रहना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे साथ कोई बैठे और बातें करें। हम सार्वजानिक समारोह और बैठकों का हिस्सा होना चाहते हैं। अकेलापन इन सभी स्थितियों में खींच ले जाने का बल पैदा करता है। यह व्यक्ति के भीतर घटित होता है जबकि एकांत में हम इन चाहतों से परे होते हैं। कुछ स्थिरता के साथ बने रहते हैं। सोच विचार करते हैं और मन की चंचलता का अवलोकन कर पाते हैं। यह हम शायद अच्छी प्रकार जानते हैं कि आधुनिक समय में मनुष्य कहाँ पर है। अकेलापन एक बीमारी की तरह रूप अख्तियार करता जा रहा है जहाँ हम सामाजिक प्रयासों की तरफ रुख कर रहे हैं। हमें इससे डर लगने लगा है। अतः हमने मानव लायब्रेरी ही खोल ली है।

डेनमार्क में 'मानव लायब्रेरी' की अवधारणा चलन में है। किताबों की जगह मनुष्य को तीस मिनटों के लिए किताब की तरह बोरो किया जा सकता है। उस दौरान व्यक्ति के जीवन अनुभवों को सुनने का मौका मिलता है। यह उपक्रम चलाने वाली संस्था संवाद से चुनौतियों का सामना करने की बात कहती है। इंदौर, हैदराबाद के बाद दिल्ली में भी इस तरह की मानव लायब्रेरी को खोला गया है। इस प्रक्रिया से यह तो तय है कि यदि व्यक्ति को किताब की तरह कुछ निश्चित समय के लिए उधार लिया जा रहा है तो इसमें

* स्वतंत्र लेखिका।

एक बोलने या साझा करने वाला है और दूसरा सुनने वाले की भूमिका में है। यह सुनने की जो प्रक्रिया है इसी में अकेलेपन का क्षोभ छुपा है। मनोरंजन के साधन व्यक्ति को सुनते नहीं बल्कि उसके दिल दिमाग को भरते हैं। चाहे कैसे भी भाव हों व्यक्ति अपने भीतर भरता जाता है। खाने की टेबल से लेकर सोने के बिस्तर तक यही स्थिति दिखाई देती है। ध्यान से सोचने पर हम यह भली प्रकार समझ सकते हैं कि हमारे जीवन के जीने के सारे तरीके वही सिखाते हैं जहाँ हम खुद को समझ ही नहीं पाते और स्व से पलायन करते जाते हैं। बड़े होकर स्कूल, कॉलेज, नौकरी या व्यवसाय, परिवार बनाना और फिर सेवा से मुक्त एक जीवन में कहीं भी वह अंतराल हम लाने के प्रयास ही नहीं करते जहाँ खुद के साथ बैठा जाए। खुद को समझने का प्रयास किया जाए। सच तो यह है कि हम कहीं भी एकांत के प्यासे के रूप में नहीं उभरते। जबकि इसी देश में महावीर और बुद्ध जैसे, ऐसे दो व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने खुद को जानने के लिए हर वह कोशिश की जो वे कर सकते थे। महावीर बहुत वर्षों तक तप में रहे और बुद्ध बौद्धिकता के साथ जीवन को समझते हुए स्व के कारणों से गुजरते हुए एकांत में रहे।

ऐसा माना जाता है कि जब गहन तप के बाद महावीर समाज की तरफ कल्याण भावना से आए तब उन्होंने 'मा हणो, हणो मा' जैसे शब्द कहे। अभिप्राय, हिंसा मत करो। किसी भी प्रकार की हिंसा करना जैन मत के खिलाफ है। जो दिखती हैं और जो नहीं दिखतीं, वे सभी हिंसा क्रियाएं इस मत में प्रतिबंधित हैं। यही जैन दर्शन और व्यवहार में मूल सिद्धांत है। इसके अलावा 'अपरिग्रह' जैसा दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिसके अंतर्गत किसी भी प्रकार का संचय नहीं करना चाहिए। अब इन दो सिद्धांतों को आधुनिक समय में देखें तो पहली हिंसा तो हम स्व के साथ ही करना शुरू कर देते हैं। हम अपने आकर्षणों की तरफ इस तेजी से भागते हैं कि कुछ सोचते ही नहीं। हर इच्छा की चाहत का एक बीज हर पल भीतर उगाते जाते हैं। जीवन के असली रस का पान करना हमको आता ही नहीं। अगर बाजार ने कोई नया सामान उतारा है तो उसे जब तक खरीद न लें हम चैन से नहीं बैठ पाते। खरीद लेने के बाद भी वह चैन आता ही नहीं। मनुष्य ताउम्र संचय ही तो करते हैं। मनुष्य की सारी गतिविधियाँ उसे अकेलेपन की तरफ ठेलती हैं। अकेलापन तनाव और आगे चलकर अवसाद में तब्दील होने में समय नहीं लेता। यही नहीं जैन मत मनुष्य के जीवन में उन कर्मों की व्याख्या भी करता है जो परमतत्त्व के मार्ग में बाधा लाते हैं। इनकी संख्या आठ मानी गई है। बेशक इस मत की बातें आधुनिक समय में करना हँसने का विषय माना जाए, पर सच तो यह है कि ये बातें और सिद्धांत आज भी कुछ सिखा ही रहे हैं।

बुद्ध के द्वारा कहे गए धम्मपदों में उच्चतम जीवन जीने के कितने ही रास्ते हैं। बौद्ध धर्म के चार महान सत्यों को हम रुककर समझ जाएं तो हम बहुत से जीवन विकारों को खत्म कर सकते हैं। चार सत्य हैं- सब जगह दुःख है, इसके कारण हैं, इन्हें दूर करने के उपाय हैं और अष्टांगिक मार्ग। बुद्ध के बताए मध्यम मार्ग में हर वह उपाय है जिससे जीवन में शीतल छाया लाई जा सकती है। इन आठ मार्गों को सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्म, जीविकापार्जन, व्यायाम, स्मृति और समाधि सम्मिलित हैं। यदि हम बुरा देखेंगे तो खुद में बुरा ही भरेंगे, ठीक इसी प्रकार स्व के विचारों को शुद्ध, सरल और करुणामयी नहीं करेंगे तो तड़प में ही जिएंगे। बोलने से पहले सोचेंगे नहीं तो बोले गए शब्दों के दास बनेंगे, कर्मों की गति गलत होगी तो फल भी वैसे ही पाएंगे। मेहनत की रोटी के बजाय दूसरों के शोषण से अनाज उपजायेंगे, तो कभी शांति नहीं मिलेगी। शरीर को मेहनत में नहीं लगाएंगे तो रक्तचाप ही बढ़ाएंगे और इन सभी कर्मों को नहीं जानेंगे तो एकांत में अकेले बैठकर भी समाधि की प्रक्रिया कभी शुरू नहीं कर पाएंगे।

ओशो अपने प्रवचनों में कथाओं के सहारे बहुत बातें स्पष्ट समझाते थे। वे जापान की एक लोकप्रिय जेन कथा सुनाते हैं, ''एक भिक्षु किसी मित्र के यहाँ गया। मित्र ने उसे एक कमरे में बैठाया और कुछ काम से बाहर गया। तभी अचानक भूकंप के झटके आने लगे। मित्र घर में सभी को बाहर ले जाने की हड़बड़ी में उस भिक्षु को भूल ही गया। याद आया तो बाहर से ही चिल्लाने लगा। अरे, भूकंप आ रहा है। आप जल्दी से बाहर आएं।'' पर उसे भिक्षु नहीं दिखा। जब भूकंप के झटके खत्म हो गए तब वह तेजी से भागकर भिक्षु के पास पहुंचा। उसे ध्यान में तल्लीन पाया। उसने हैरान होते हुए भिक्षु से कहा, ''बड़े अजीब आदमी हैं आप! इतने तेज भूकंप के झटके आ रहे थे। मैं इतना चिल्लाया। बाहर आइए..। बाहर आइए! पर आपको तो कोई खबर ही नहीं।'' भिक्षु मुस्कुराते हुए बोला, ''मैं भीतर था तो बाहर कैसे आता। मैं कई वर्षों से बाहर नहीं रहता।'' कथा का दर्शन यह है कि जो भी स्व में है वह बाहर के छलावे में नहीं आता। उसके लिए हर चमकती चीज मिट्टी से भी कम मूल्य की ही है।

स्व के भीतर झांकना हमें कभी पूरा नहीं करता। स्व के भीतर रहना पड़ता है। लोग मौन रहने की बात कहते हुए नहीं थकते। पर अगर दिमाग में विचार के प्रलय आते ही रहते हैं तो बाहर से दिखने वाला मौन भीतर का शोर उजागर कर सकता है। बात तो

तब बनती है जब हम खुद को धीरे-धीरे शांत रहने की अवस्था में ले जाते हैं। अंग्रेजी में जिन लोगों को इंट्रोवर्ट कहा जाता है हिंदी में उनके लिए बहुत सुंदर शब्द है- अंतर्मुखी। जिसका मुख भीतर की तरफ खुला हो वही अंतर्मुखी है। सूरजमुखी का फूल सूरज की तरफ देखता है तो वह सूरजमुखी कहलाता है। अतः अंतर्मुखी होना ही एकांत की बारिश में नहाना है।

ओशो एक कहानी कहते हैं, एक रोज जर्मनी का बड़ा चित्रकार अपने घर में मरा पाया गया। लोगों ने कहा कि उसने आत्महत्या की है। एक दूसरे गुट का कहना था कि वह तो चित्रकार था, आत्महत्या कैसे कर सकता है? पुलिस आई। दरवाजा तोड़कर अंदर घुसा गया। पुलिस अधिकारी हैरान हो पूरे कमरे को देखते रह गए। जब बाहर खड़े कुछ लोगों को पुलिस की गतिविधियों की आवाज नहीं आई तो वह आपस में ही बतियाते हुए अंदर दाखिल हुए और वे भी हैरान रह गए। उस चित्रकार ने अपने घर में हर जगह और वस्तुओं में केवल और केवल दो ही रंगों का इस्तेमाल किया था। उसका चाय का कप या फिर उसकी सभी पेंटिंग्स में दो ही रंग थे। वह चित्रकार इतना विचित्र था कि उसे महज दो ही रंग दिखाई देते थे। अतः उसके जीवन में उदासी और नीरसता ने जगह बना ली। वह अकेला व्यक्ति दिन रात उन्हीं रंगों में रहता। इसके कारण उसके दिमाग पर एक दिन बहुत बुरा असर हुआ और उसने सोचा, ''जब यही दो रंग हैं तो दुनिया में जीने का क्या लाभ?'' इसके बाद उसने खुद का जीवन खत्म कर लिया।

वास्तव में यही मूल है कि यदि हम महज भोग विलास को ही दोहराते जाएंगे तो एक दिन हमारी भी इसी चित्रकार जैसी स्थिति होगी। जो हम देखते हैं और करते हैं, भीतर वही जमा करते हैं। यह जो निरंतर जमा होने वाली मेमरी है अगर इसमें शांति, संतुष्टि और स्थिरता नहीं होगी तो हम निश्चित रूप से इस चमकीली पूंजीवादी सभ्यता के भेंट चढ़ जाएंगे। अगर स्व और दूसरों के लिए करुणा और मंगल की कामना ही नहीं करते तो यह होगा कैसे? पृथ्वी हमारे भावों को कुछ इस तरह समझती है कि जैसा हम सोचते हैं वह वही हमारे आगे प्रस्तुत करती जाती है।

ओशो की ही सुनाई गई एक अन्य कहानी से इसे समझकर बात पूरी करनी होगी। मुल्ला नसीरुद्दीन की प्रसिद्धि सुनकर एक शिष्य उनके पास ज्ञान की खोज में आ पहुंचा। उसने मुल्ला से कहा, ''मैं जहाँ गया मुझे कोई ज्ञानी और गुणी गुरु नहीं मिला। फिर मुझे आपके बारे में पता चला। मैं सीधे बिना विश्राम के आपके पास आ गया। मुझे उम्मीद है कि आप मुझे परम ज्ञान तक पहुंचा देंगे।'' मुल्ला ने उसकी बातें सुनी और बोले, ''ठीक है! पर एक शर्त है कि तुम कोई सवाल नहीं करोगे। बस अवलोकन करते जाओगे।'' व्यक्ति तैयार हो गया। एक दिन मुल्ला बिना पेंदी का बड़ा लोटा लेकर आए और उससे बाल्टी का पानी उड़ेल-उड़ेल कर भरने लगे। नया शिष्य यह देखकर हैरान हो गया। पर वह कुछ बोल न पाया। अगले दिन मुल्ला उसी बर्तन को कुंए के पास लेकर गए और पानी निकाल कर भरने लगे। अब नए शिष्य से यह देखा ही नहीं गया। वह बोला, ''मैं तो आपके पास ज्ञान की आस में आया था और मुझे यह दिखाई पड़ता है कि आपसे तो बड़ा नासमझ और बेवकूफ पहले का गुरु भी नहीं था। माफ करें! मैं आपका शिष्य नहीं बन सकता।'' मुल्ला यह सुनकर बोले, ''तुमने सवाल करने की शर्त तोड़ दी। दूसरा तुम पहले से ही इतने भरे हुए हो कि तुम खुद को खाली करने के लिए तैयार ही नहीं हो। तुमसे अच्छा तो मेरा यह लोटा है। इसमें जान या दिमाग नहीं है फिर भी यह अपने को भीतर से हर बार खाली करने को तैयार हो जाता है। अब तुम जा सकते हो।'' शिष्य उदासी से चल दिया। वह समझ चुका था।

मनुष्य जीवन पहले से ही बहुत जटिल है। संवेदनाओं से भरे हुए मनुष्य की नियति ग्रीक मिथक सिसिफस की तरह है। वह एक बड़े पत्थर को शक्ति और संघर्ष से पहाड़ की चोटी तक नीचे से ऊपर सदियों से धकेलता आ रहा है। जैसे ही वह पत्थर को चोटी तक लाता है पत्थर फिर नीचे गिर जाता है। सिसिफस पुनः उसे चोटी पर चढ़ाने की प्रक्रिया में तल्लीन हो जाता है। मनुष्य को जीवन मिला है तो तमाम संघर्ष, दर्द, खुशी अँधेरा आदि उसके खाते में हैं। इनसे कौन बचेगा? लेकिन यह तो किया ही जा सकता है कि बदलती दुनिया में हम सरलतम और बुनियादी उपभोग के साथ संतुलित और संयमित जीवन जीने की कोशिश करें। हम पर बुद्ध या महावीर की तरह तप करने का दबाव नहीं है बल्कि जीवन को जीने का सरलतम आग्रह जैसा विकल्प है। हमें अकेलेपन के पनपने की प्रवृत्तियों को समझकर उसे नष्ट करते हुए एकांत की लय में जाने के प्रयास करने ही चाहिए। सिसिफस की कहानी का सकारात्मक भाग यह है कि वह भले ही पत्थर को चोटी पर नहीं चढ़ा पा रहा पर वे अपने प्रयासों को किसी भी तरह से रोकने के लिए तैयार नहीं है। सिसिफस अकेला है पर एकांत की समझ उसके भीतर है तभी वह बिना किसी से शिकायत किए सदियों से जीवन की तरफ चलता जा रहा है।

****